प.पू. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
कोबातीर्थ पिन-382009

Copy-2
Delivered
6/06/2001
Received
19-2-97

# तित्थयर

वर्ष २० : अंक ५ सितम्बर १९९६

जैन भवन

# तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २० : अंक ५
सितम्बर १९९६

□

संपादन
**राजकुमारी बेगानी**
**लता बोथरा**

□

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक
**जैन भवन**
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७०००७

□

मुद्रक
**अनुप्रिया प्रिन्टर्स**
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन
कलकत्ता-७


## सूची


| | |
|---|---|
| साधन स्रोत | १३३ |
| प्राकृत जैन आगम में श्रीकृष्ण साहित्य | १३९ |
| चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास | १४७ |
| प्रवचन | १५१ |
| महाराजा श्रेणिक | १५५ |
| संकलन | १६१ |
| जैन पत्र पत्रिकाएँ कहाँ/क्या | १६२ |

3731

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

NAHAR

**Interior Decorator**

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

**Phone : 247-6874** **Resi. : 244-3810**

# मध्यकालीन राजस्थानी जैन इतिहास के

# ॥ साधन-स्रोत ॥

डा० श्रीमती राजेश जैन

(पूर्वानुवृति)

## (ब) साहित्य :

मध्यकालीन जैन साहित्य न केवल जैन धर्म के अवबोधन के लिये, अपितु राजस्थान के तिमिराच्छन्न अतीत को आलोक पथ पर लाने के लिये भी अति मूल्यवान है। भारतीय साहित्य-परम्परा के निर्माण में जैन मुनियों एवं रचनाकारों का योगदान निरन्तर एवं अक्षुण्ण रहा है। संस्कृत से लेकर प्राकृत, अपभ्रंश तथा अन्यान्य देश्यभाषाओं तक जैनों की सृजन सलिला का प्रवाह कभी नहीं सूखा। जैन साहित्य जितना प्रचुर है, उतना ही प्राचीन भी; जितना परिमार्जित है, उतना ही विषय वैविध्यपूर्ण भी; और जितना प्रौढ़ है, उतना ही विविध शैली सम्पन्न भी। जैन साधक सदैव देशकाल एवं तज्जन्य परिस्थितियों के प्रति जागरूक रहे हैं। उनकी ऐतिहासिक बुद्धि कभी सुषुप्त नहीं रही; और यही कारण है कि धार्मिक एवं सम्प्रदाय मूलक साहित्य सृजन करते हुये भी वे देशकाल से सम्बन्धित अपनी रचनाओं में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक तथ्य दे गये हैं, जिनका यदि वैज्ञानिक पद्धति से अध्ययन किया जाय तो भारतीय इतिहास के कई तिमिराच्छन्न पक्ष आलोकित हो उठें। विविधतीर्थ-कल्प, प्रभावक चरित्र, प्रबन्ध कोश, कथाएँ, विज्ञप्ति पत्र, प्राचीन तीर्थ मालाएँ, तीर्थ स्तवन, गच्छों एवं संघों की पट्टावलियों, प्रशस्ति संग्रह, प्रतिष्ठा लेख आदि ऐसी उपलब्धियाँ हैं, जो मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म की सुदृढ़ एवं समृद्ध परम्परा को द्योतक हैं। साथ ही इनसे तत्कालीन भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक धारणाओं का प्रामाणिक विवेचन भी प्राप्त होता है।

### (१) साहित्यिक ग्रन्थ :

प्रारम्भिक जैन साहित्य पूर्णरूपेण धर्म एवं दर्शन से परिपूर्ण है, जो जैन धर्म के सिद्धान्तों की आधारभूमि निर्मित करता है। "कल्पसूत्र", "आचारांग सूत्र" और "उत्तराध्ययन सूत्र" जैन मत के आदिकाल के परिचायक हैं। राजस्थान में रचित जैन साहित्यिक कृतियाँ इनके उत्तरवर्ती काल की हैं। ये कृतियाँ राजस्थान में जैन धर्म की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालती है।

बारां (कोटा जिला) में १०वीं शताब्दी में पद्मनन्दी रचित, "जम्बूद्वीपपण्णत्ति", १७७९ ई० में जालौर में उद्योतनसूरि रचित "कुवलयमाला", १३७० ई० में जयानन्द रचित "प्रवासगीति काव्य", १४८६ ई० में सोमचरित गणी रचित "गुरुगुण रत्नाकर काव्य" और १८वीं शताब्दी में मेघविजय रचित "दिग्विजय महाकाव्य" विशेष महत्त्वपूर्ण साहित्यिक कृतियाँ हैं।[१]

## (२) ऐतिहासिक कृतियाँ

मध्यकालीन राजस्थान के विभिन्न राजवंशों के उत्थान, पतन एवं अस्तित्व को निश्चित स्थान तक पहुंचाने में भी जैन ऐतिहासिक कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं। हेमचन्द्र सूरि रचित "द्वयाश्रम" एवं "त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र" चालुक्य कालीन जैन धर्म के इतिहास के लिये उपयोगी हैं। १४०४ ई० में प्रभाचंद सूरि रचित "प्रभावक चरित्र" एवं अज्ञात आचार्य द्वारा संकलित "पुरातन प्रबन्ध संग्रह" में कई जैन शासकों एवं मुनियों से सम्बन्धित धारणाओं का रोचक वर्णन है। १५वीं शताब्दी में जिनहर्ष रचित "वस्तुपाल चरित्र" और १५११ ई० में लावण्य समय रचित "विमल चरित्र" इस काल के जैन सन्तों के इतिहास सम्बन्धी जानकारी के लिये विश्वसनीय स्रोत हैं। १८५२ ई० में देवसेन रचित "दर्शनसार," दिगम्बर सम्प्रदाय में संघों की उत्पत्ति पर प्रकाश डालता है। १३३६ ई० में लिखा गया "उपकेशचरित्र" जैन इतिहास के अनुशीलन के लिए उपयोगी है। १२४८ ई० में जिनपति उपाध्याय रचित "युगप्रधानाचार्य गुर्वावलि" जैन सन्तों के जीवन सम्बन्धी तथ्यों के लिये विश्वसनीय स्रोत हैं। १७वीं शताब्दी में जयसोम रचित "करमचंद्र वंशोत्कीर्तन काव्यम्" करमचन्द्र के जीवन सम्बन्धी विश्वसनीय सूचनाओं के खान हैं; तथा बीकानेर राज्य में जैन धर्म के अस्तित्व एवं प्रभाव पर काफी प्रकाश डालता है। १३४९ ई० में रचित राजशेखर के "प्रबन्धकोश" में कई जैन साधु, कवि राजा और अन्य व्यक्तियों का जीवन वृत्त है।[२] इसके अतिरिक्त, हरिभद्र सूरि की "समराइच्चकहा" तथा हरिषेण का "बृहत्कथाकोष" आदि ऐसे प्रबन्ध हैं, जिनसे तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन पर अच्छा प्रकाश पड़ता है।[३] पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास को समृद्ध बनाने के लिए भी इन प्रबन्धों का उपयोग अत्यन्त वांछनीय है।

---

१. जैइरा, पृ० ४।
२. चौधरी, जी० सी०—पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृ० ३-४।
३. वही, पृ० ३-४।

## (३) प्रशस्तियाँ :

इनकी महत्ता एवं उपयोगिता अभिलेखों के सदृश है। मध्यकाल में ८वीं एवं ९वीं शताब्दी से ही प्रशस्तियाँ लिखी जाने लगी थीं। उनमें से जो सुरक्षित रह पाई है, वे जैन इतिहास के पुनर्निर्माण में अत्याधिक महत्वपूर्ण स्रोत सिद्ध हुई हैं। जैन साहित्यइतिहास निर्माण के सन्दर्भ में भी इनका योगदान है। १२वीं एवं १३वीं शताब्दी से इनका निर्माण सामान्य रीति से होने के कारण ये हमें मूल्यवान जानकारी से लाभान्वित कराती है। इनमें ग्रन्थ की निर्माण तिथि, तत्कालिक शासक का नाम, दानदाता व दानग्रहीता का नाम, उनके संघ, गण, गच्छ, गुरुओं के नाम, दानदाता की जाति, गोत्र, वंशावली आदि का उल्लेख होने से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं। पाण्डुलिपियों की कई-कई प्रतियाँ जन-औदार्य की भी सूचक हैं। विजयसिंहसूरि द्वारा ११३४ ई० में विरचित "उपदेशमाला वृत्ति" एवं चन्द्रसूरि द्वारा ११३६ ई० में विरचित "मुनिसुव्रतचरित्र" की प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भौर के जैन मन्दिरों पर स्वर्ण कलश चढ़ाये।[१] "पंचाशक वृत्ति" की एक प्रति से ही हमें ज्ञात होता है कि कुमारपाल ने ११५० ई० के आसपास पाली को विजित किया था।[२] आशाधर रचित धर्मामृत टीका की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि आशाधर ने मोहम्मद गोरी के आक्रमण के कारण माण्डलगढ़ छोड़कर धारा नगरी को प्रस्थान किया था।[३] इसी प्रकार की जानकारी १२७८ ई० में रचित "जिनदत्त चरित्र" की प्रशस्ति से कवि लक्ष्मण के बारे में त्रिभुवनगिरि को छोड़ने के सन्दर्भ में मिलती है।[४] समय सुन्दर की "अष्टलक्ष प्रशस्ति" से जिनभद्र सूरि द्वारा जैसलमेर, जालौर, नागौर आदि में ज्ञान भण्डारों की स्थापना की जानकारी मिलती है।[५] इनके द्वारा चित्तौड़, मंडोर, तलवाड़ा आदि में प्रतिमाओं एवं मन्दिरों के प्रतिष्ठा-समारोह सम्पन्न करवाने की जानकारी भी १४४० ई० की "जैसलमेर जिनालय प्रशस्ति" से ज्ञात होती है।[६] १४६१ ई० में रचित "वर्धमान चरित्र" की एकमात्र प्रति की प्रशस्ति से खंडेला के

---

१. गाओसि, जि० ७६, ३१२-३१६।
२. वही।
३. डैसाओइ, पृ० ३४४।
४. अने, जि० ८, पृ० ४००
५. जैसप्र, जि० १६, पृ० १६।
६. वही।

शासक उदयकरण के बारे में ज्ञात होता है।[१] तिजारा और नागौर के खानजादा और खान शासकों के काल में रचित ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ उनके इतिहास के पुनर्निर्माण के लिये महत्त्वपूर्ण हैं।[२] १४९० ई० में रचित "आत्मप्रबोधन" की प्रशस्ति बयाना के बारे में[३] तथा १५५१ ई० में रचित "होलि रेणुका चरित्र" की प्रशस्ति, सांभर और रणथम्भौर के इतिहास निर्माण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। [४] आमेर में १७१२ ई० में रचित "हरिवंश पुराण" की प्रशस्ति यहाँ के किले, बाजार, जनता आदि के बारे में महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रदान करती है।[५] १४०७ ई० में मलयगिरि रचित "सप्तति टीका" की प्रशस्ति के श्लोक संख्या १२ में महाराणा लाखा के राज्य में जावर के उन्नति करने एवं देलवाड़ा (मेवाड़) के श्रेष्ठी कान्हा द्वारा "वीर विहार" व शान्तिनाथ मन्दिर निर्मित करवाने का उल्लेख है।[६] १४९९ ई० की एक अप्रकाशित वृहत् प्रशस्ति के ७ १२७वें श्लोक में, इसके रचयिता साधु राजशील का नाम है, जो अगरचंद नाहटा के अनुसार बाद में आचार्य पद पाने पर राजरत्न सूरि कहलाए। इसमें मेवाड़ के राजाओं तथा जैन चैत्य निर्माता मन्त्री के वंश का विवरण होने के साथ-साथ खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा की आचार्य परम्परा का भी अच्छा विवरण मिलता है। इस प्रशस्ति के अनुसार, इस शाखा के प्रवर्तक जिनवर्द्धन सूरि के पट्टधर जिनचंद्र सूरि हुए थे। उन्हीं के समय में १४९९ ई० में यह प्रशस्ति रची गई। "अष्टसप्ततिका", चित्तौड़ के मन्दिर की एक अन्य प्रशस्ति है, जिसमें खरतरगच्छ एवं चैत्य परिपाटी के विषय में पता चलता है। इस प्रकार अन्यान्य कई प्रशस्तियाँ जैनधर्म और भारतीय साहित्य के इतिहास निर्माण के लिए महत्त्वपूर्ण स्रोत है।

(४) पट्टावलियाँ :

ये भी इतिहास निर्माण की विश्वसनीय स्रोत है। जैन पट्टावलियों से जैन गुरु परम्परा एवं धार्मिक स्थिति की जानकारी प्राप्त होती है। साथ ही

---

१. इस ग्रन्थ की प्रति ब्यावर के शास्त्र भण्डार में है।
२. एसिटारा, पृ० १५।
३. इस ग्रन्थ की प्रति बयाना के शास्त्र भण्डार में है।
४. जैगप्रस, संख्या ४५।
५. एसिटारा, पृ० १५।
६. शोध वर्ष ३७, अंक २, अप्रेल-जून १९८६, राजबल्लभ सोमानी का लेख हरिकलश की तिथि, पृ० ३८।
७. सोमानी, वीरभूमि चित्तौड़, पृ० २७१-२७५।

इनसे कई राजाओं के नाम, नगरों के वर्णन, व्यापारिक स्थिति आदि पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। महत्त्वपूर्ण पट्टावलियाँ—खरतरगच्छ पट्टावली, तपागच्छ पट्टावली, मूलसंघ पट्टावली, भट्टारक पट्टावली, नन्दिसंघ पट्टावली आदि हैं। इनमें विभिन्न जातियों एवं गोत्रों के उत्पत्ति विषयक वर्णन भी हैं। खतरगच्छ पट्टावली ओसियाँ से ही पता चलता है कि कई माहेश्वरी परिवारों को जैन धर्म में दीक्षित किया गया था। उपकेशगच्छ पट्टावली ओसियाँ के बारे में तथा कोरंटगच्छ पट्टावली कोरटा के बारे में उपयोगी जानकारी देती है।[१] इन पट्टावलियों में जैन गुरुओं के धार्मिक कृत्यों सम्बन्ध में तो तथ्य प्राप्त होते ही हैं, साथ ही तत्कालीन ऐतिहासिक जानकारी भी प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ, जिनपाल उपाध्याय की "खतरगच्छ बृहद गुर्वावली" में अर्णोराज, पृथ्वीराज, समरासिंह, जैसलमेर के कर्णदेव तथा सुल्तान कुतुबुद्दीन का वर्णन है। प्रसंगवश ११वीं से १४वीं शताब्दी तक के अन्य ऐतिहासिक विषयों की भी इसमें चर्चा की गई है।[२] डूंगरपुर से प्राप्त एक प्राचीन पट्टावली में आचार्य भुवनकीर्ति को १४५१ ई० में भट्टारक होना स्वीकार किया गया है, जब कि कई पट्टावलियों में इन्हें भट्टारक होना स्वीकार नहीं किया गया।[३] सोमकीर्ति रचित "गुर्वावली" से काष्ठा संघ के इतिहास का बोध होता है। यह कृत्ति साहित्य के इतिहास की दृष्टि से बहुत मूल्यवान है।[४] मूलसंघ पट्टावली से आचार्यों की विभिन्न नगरों में गतिविधियों का भी ज्ञात होता है।[५] क्षेमेन्द्र कीर्ति रचित भट्टारक पट्टावली से भी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

विविध गच्छों की पट्टावलियों के संग्रह के रूप में चार ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है।[६] प्रथम-मुनि दर्शन विजय द्वारा सम्पादित "पट्टावली समुच्चय", २ भागों में है। उसके प्रथम भाग में कल्पसूत्र, की, नन्दीसूत्र की स्थविरावली, तपागच्छ की कई पट्टावलियाँ, उपकेश गच्छीय पट्टावली आदि तथा द्वितीय भाग में कच्छूलोगच्छ, पूर्णिमागच्छ, आगमगच्छ, बृहदगच्छ एव केवलगच्छ की पद्यबद्ध भाषा पट्टावलियों का संग्रह है। द्वितीय ग्रन्थ—मोहन लाल देसाई के "जैन

---

१. एसिटारा, पृ० १६।
२. इए, जि० २०, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटरली, जि० २६, पृ० २३३।
३. तारा मंगल—महाराणा कुंभा और उनका काल, पृ० १५१।
४. कासलीवाल—राजस्थान के जैन संत व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ० ४४।
५. वही पृ० ५०।
६. नाहटा, अगरचंद—पट्टावली प्रबंध संग्रह की भूमिका, पृ० ३७।

गुर्जर कवियों" के भाग २ व ३ के परिशिष्ट के विभिन्न पट्टावलियों का गुजराती में सारांश है। तृतीय प्रयत्न मुनि जिनविजय का विविध गच्छीय पट्टावली संग्रह" है। इसमें प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी एवं गुजराती आदि भाषाओं की पट्टावलियों का संग्रह है। चतुर्थ प्रयास जैन इतिहासविद् मुनिकल्याणविजय का "श्री पट्टावली पराग संग्रह" है, जिसमें छोटी-बड़ी ६४ पट्टावलियों का सारांश है। "पट्टावली प्रबंध संग्रह" में लोकागच्छ की सात पट्टावलियों-पट्टावली प्रबंध गणी तेजसीकृत पद्म पट्टावली, संक्षिप्त पट्टावली, बालापुर पट्टावली, बड़ौदा पट्टावली, मोटा पक्ष की पट्टावली और लोंका गच्छीय पट्टावली; तथा स्थानकवासी परम्परा की दस पट्टावलियों विनयचन्द कृत पट्टावली, प्राचीन पट्टावली, रावराज जी की पट्टावली, खंभात पट्टावली, गुजरात पट्टावली, भूधरजी की पट्टावली, मरुधर पट्टावली, मेवाड़ पट्टावली, दरियापुरी संघ पट्टावली और कोटा परम्परा की पट्टावली आदि का संग्रह है। इनमें प्रदत्त सूचनाएं जैनधर्म के इतिहास निर्माण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। पट्टावलियों में दी गई जानकारी पूर्णरूपेण प्रामाणिक व स्पष्ट नहीं कही जा सकती है, फिर भी आलोचनात्मक परीक्षण के उपरान्त ये बहुत उपयोगी साधन सिद्ध होती है।

क्रमशः

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA
Export House recognised by Govt. of India
*Proprietor :* **SANJIB BOTHRA**
8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001
Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

# प्राकृत जैन आगम में श्रीकृष्ण साहित्य

श्री राजेन्द्र मुनि शास्त्री

भारतीय जनमानस में कृष्ण का अस्तित्व अनेक रूपों में आया और उभरा है। इसमें कृष्ण चरित्र का जो ताना-बाना गूंथा गया उसमें वैदिक, बौद्ध और जैन विचार के अनुसार ही कृष्ण के व्यक्तित्व में अनेक रंग और अनेक विशेषताएँ आकर के घुलमिल गई हैं। इस परिस्थिति में शोधकर्ता के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं। कृष्णचरित्र और उनके जीवन के प्रसंग भिन्न-भिन्न भाषाओं में और भिन्न-भिन्न कालों में संग्रहित हुए हैं। इसलिए उसका एक सूत्रबद्ध विकास-क्रम प्रस्तुत करना एक कठिन कार्य है।

यहां पर 'आगम' शब्द जैन साहित्य में एक विशेष महत्व रखता है। इसलिए प्रथम आगम शब्द की परिभाषा और उसकी व्याप्ति पर मैंने विचार किया और बाद में आगम के जिन पर्यायों का प्रयोग जैन साहित्यकारों ने कृष्ण जीवन के प्रसंगों और जैन तीर्थंकर अरिष्टनेमि के जीवन के प्रसंगों के साथ किया है और उसे लेकर श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व के साथ मिलाया है। इसमें कुछ गुण साम्य है, कुछ गुण सामर्थ्य साम्य और कुछ अपनी विशेषताएँ और वैषम्य भी। इन सब को आगम और आगमेतर की भिन्न-भिन्न विधाओं में जैन साहित्यकारों ने सर्जित किया है। इनकी भाषा प्राकृत रही है।

## आगम शब्द-मीमांसा

आगम शब्द "आ" उपसर्ग और गम् धातु से निष्पन्न हुआ है। "आ" उपसर्ग का अर्थ समंतात् अर्थात् पूर्ण है तथा गम धातु का अर्थ गति प्राप्त करना है। आगम शब्द की अनेक परिभाषाएँ आचार्यों ने की है, जैसे—

१. जिससे वस्तुत्व या पदार्थ रहस्य का परिज्ञान हो जाय वह आगम है।[१]

२. जिससे पदार्थों का यथार्थ ज्ञान हो वह आगम है।[२]

---

१. आसमन्तात् गम्यते वस्तुतत्त्वमनेनेत्यागमः।

२. आगन्यते मयःदयाऽवबुध्यन्तेऽथाः अनेनेत्यागमः—रत्नाकरावतारिकावृत्ति।

३. जिससे पदार्थों का परिपूर्णता के साथ मर्यादित ज्ञान हो जाय वह आगम है ।[१]

४. आप्तवचन से उत्पन्न अर्थ या पदार्थ ज्ञान आगम कहलाता है ।[२]

५. आप्त का कथन आगम है ।[३]

६. उपचार से आप्तवचन भी आगम माना जाता है ।[४]

जिससे सही शिक्षा प्राप्त होती है, विशेष ज्ञान उपलब्ध होता है, वह 'शास्त्र-आगम', 'श्रुतज्ञान' कहलाता है ।

## आगम के पर्यायवाची शब्द

मूल वैदिक शास्त्रों को जैसे वेद और बौद्ध शास्त्रों को जैसे पिटक कहा जाता है, वैसे ही जैन शास्त्रों को 'श्रुत' 'सूत्र' या 'आगम' कहा जाता है। जैनागमों में दर्शन और जीवन का आचार एवं विचार को भावना तथा कर्त्तव्य का जैसा सुन्दर समन्वय हुआ है वैसा अन्य साहित्य में दुर्लभ है ।[५]

आजकल 'आगम' शब्द का प्रयोग अधिक होने लगा है किन्तु अतीतकाल में 'श्रुत' शब्द का प्रयोग अधिक होता था। श्रुतकेवली, श्रुतस्थविर जैसे शब्दों का प्रयोग भी आगमों में अनेक स्थलों पर हुआ है ।[६] किन्तु कहीं पर भी आगम केवली या आगम-स्थविर का प्रयोग नहीं हुआ है ।

सूत्र, ग्रंथ, सिद्धान्त, प्रवचन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापन, आगम, आप्तवचन, ऐतिह्य आम्नाय और जिन वचन, श्रुत ये सभी शब्द आगम के ही पर्यायवाची शब्द हैं। श्रमण भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य इंद्रभूति गौतम ने इस जिनवाणी को १२ अंग ग्रन्थों तथा १४ पूर्वों के रूप में संयोजित किया था। अंग ग्रंथों तथा पूर्वों के नाम इस प्रकार हैं :—

---

१. आ-आभिविधिना सकलश्रुतविद्याव्याप्तिरूपेण मर्यादया वा यथावस्थित-रूपयागम्यन्ते-परिच्छिद्यन्ते अर्थायने स आगमः ।
—आवश्यक मलयगिरिवृत्ति; नन्दीसूत्रवृत्ति ।

२. आगच्छत्याचार्यपरम्परयार्थाविधारणमित्यागमः ।
सिद्धसेनगणीकृत-तत्त्वार्थभाष्यानुसारिणी टीका

३. आप्तोपदेशः शब्दः—न्यायसूत्र १-१७

४. आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः उपचारादप्तवचनं च ।

५. सा सिज्झइ जेण वयं सत्थं तं बा विसेसियं नाणे ।
आगय एव य अत्थं आगमसत्थं तु सुयनाणं ।

६. नन्दीसूत्र—विशेषावश्यकभाष्य गा० ४४९

१२ अंग-ग्रंथ—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्या-प्रज्ञप्ति ( भगवती ), ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोष-पातिबदशा, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवाद ।

१४. पूर्व—उत्पादपूर्व, अग्रायणीयपूर्व, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्यानुवाद, अवंध्य प्रणायु, क्रियाविशाल, लोकबिन्दुसार ।

जो मुनि उपरोक्त सम्पूर्ण वाणी की अवधारणा कर सका उसे श्रुतकेवली कहा गया। श्रुतकेवली शब्द से यह प्रतिभासित होता है कि जिन वाणी प्रारम्भ में श्रुतरूप में ही सुरक्षित रही। जिस प्रकार वेद-वेदांग लम्बे समय तक श्रुति-रूप में बने रहे। यही स्थिति प्रारम्भ में जैन साहित्य की बनी रही। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि श्रुतकेवली[१] हुए हैं जिनमें से भद्रबाहु अन्तिम थे।[२]

भद्रबाहु के समय यानि ई०पू० ३२५ में मगध में १२ वर्ष का दुष्काल पड़ा था, उस समय ससंघ भद्रबाहु मगध से प्रस्थान कर गये थे। दुर्भिक्ष के पश्चात् भद्रबाहु की अनुपस्थिति में मुनिवर स्थूलभद्र के सान्निध्य में पाटलीपुत्र नगरी में लुप्त होते जा रहे आगमों की गंभीर समस्या को लेकर मुनि-सम्मेलन आयोजित किया गया था।[३] इसमें लुप्त होते जा रहे आगमों को व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया। इस प्रयास क्रम में ११ अंग ही एकत्रित किए जा सके। १२वां दृष्टिवाद तथा १४ पूर्वों का ज्ञान निःशेष हो गए। जो अंग एकत्रित किए गए उन्हें लेकर भी मतभेद खड़े हुए कि ये प्रामाणिक हैं या नहीं। भद्रबाहु के साथ मगध से जो साधुसंघ चला गया उसनेप्रामाणिकता को स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार प्रमाणिकता को लेकर दो भागों में यह संघ विभक्त हो गया। एक वर्ग (श्वेताम्बर संप्रदाय) ११ अंगों को प्रामाणिक मानता है तो दूसरा वर्ग (दिगम्बर संप्रदाय) संपूर्ण आगम साहित्य को विच्छिन्न मानता हुआ

---

१. सुयसुत्तगन्थ-सिद्धंतपवयणे आणवयउवएसे पण्णवण्ण आगमे या एकट्ठा पज्जवासुत्ते—अनुयोगद्वार, विशेषावश्यक भाष्य

२. प्रभवस्वामी, शयम्भव, यशोभद्र, सम्भूतिविजय और भद्रबाहु (श्वेताम्बर परपरानुसार )
आर्य-विष्णुनन्दि, नन्दिमित्र, अपराजित, आचार्य-गोवर्धन, भद्रबाहु ( दिगंबर परम्परानुसार ) देखें— जैनधर्म का मौलिक इतिहास, खण्ड-२ पृष्ठ-३१५ ले० आचार्य हस्तिमलजी महाराज, जयपुर

३. जैन धर्म—पं० कैलाशचन्द शास्त्री, पृ० ४०-५०

इसे अस्वीकार करता है। यह संप्रदाय आगमों के आधार पर रचित कतिपय ग्रन्थों को आगम साहित्य के रूप में स्वीकार करता है। १

**ये ग्रंथ क्रमशः इस प्रकार हैं :**

(१) षट्खण्डागम—इसकी रचना प्राकृत भाषा में आचार्य धरसेन के शिष्य आचार्य भूतबलि ने और आचार्य पुष्पदन्त ने वीर निर्वाण की सातवीं शताब्दी में याने ई० सन् दूसरी शताब्दी में की।

(२) कषाय प्राभृत—इसके रचनाकार आचार्य गुणधर ने लगभग इसी समय इसकी रचना की।

(३) महाबन्ध—यह षट्खण्डागम का ही अंतिम खण्ड है। इसके रचनाकार आचार्य भूतबलि हैं।

(४) धवला तथा जयधवला—इनके टीकाकार वीरसेनाचार्य हैं। ये प्रथम दो ग्रंथों की टीकाएँ हैं।

(५) सिद्धान्तों के परम मर्मज्ञ कुन्दकुन्दाचार्य ने भी मूल आगमों को संलक्ष्य में रखकर कई ग्रंथों का निर्माण किया है—जिनमें से प्रवचनसार, समयसार पंचास्तिकाय तथा विभिन्न पाहुड ग्रन्थ हैं।

समय-समय पर आगम ग्रन्थों का संकलन होता रहा है जो क्रमशः इस प्रकार जाना जा सकता है—

(१) प्रभुमहावीर निर्वाण के १६० वर्ष बाद (ई० पू० सन् २६७ में) स्थूलभद्राचार्य के सान्निध्य में हुआ।

(२) ई० सन् ३२७-३४० के मध्य मथुरा में स्कन्दिलाचार्य की अध्यक्षता में हुआ।

(३) ई० सन् ४५३-४६६ के मध्य बल्लभी में आचार्य देवर्द्धि गणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में हुआ।

वर्तमान मे उपलब्ध संकलन आचार्य देवर्धि गणी क्षमाश्रमण की अध्यक्षता में आयोजित श्रमण समुदाय (ई० सन् ४५३ से ४६६ स्थान वल्लभीनगर काटियावाड़) द्वारा किया गया था। अस्तु, श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य किया जाने वाला आगमिक साहित्य प्रभु महावीर निर्वाण के लगभग एक हजार वर्ष बाद संकलित हुआ था।

---

१. जैन धर्म—ले० पं० कैलाशचन्द्रशास्त्री, २४६,४५

मूल आगम साहित्य ११ अंगों के रूपों में अवशिष्ट समझा जा सकता है। परन्तु, मूल आगमों के आशय को संलक्ष्य में रखकर अनेकों आचार्यों ने जो ग्रन्थ व टीकाएँ लिखी हैं वे आगमिक साहित्य में गिनी जाती हैं। इस प्रकार महावीर निर्वाण के पश्चात् आगमिक साहित्य के ग्रन्थों की संख्या ८४ तक पहुंच गयी थी, जिनके नाम नन्दीसूत्र में निम्न रूप से है।[१३]

**अंगग्रन्थ**

आचारांग सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञाता धर्मकथा उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, प्रश्नव्याकरण विपाकसूत्र, दृष्टिवाद (विलुप्त हो गया)।

**उपांग**

औपपातिक, राजप्रश्नीय, जीवाभिगम, प्रज्ञापना, सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका (कल्पिका) कल्पावतंसिका, पुष्पिका, पुष्पचूलिका वृष्णिदशा।

**मूलसूत्र**

उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, नन्दीसूत्र अनुयोगद्वार सूत्र, आवश्यक सूत्र।

**छेदसूत्र**

बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कंध, निशीथ, महानिशीथ, पंचकल्प।

**प्रकीर्णक**

चतुःशरण, आतुरप्रत्याख्यान, भक्त परिज्ञा, संस्तारक, तंदुलवैचारिक, चन्द्रवैध्यक, देवेंद्रस्तव, गणिविद्या, महाप्रत्याख्यान, वीरस्तव, अजीवकल्प, गच्छाचार, मरणसमाधि सिद्धप्राभृत तीर्थोद्गालिक, आराधनापताका, द्वीपसागर प्रज्ञप्ति ज्योतिषकरंडक, अंगविद्या तिथिप्रकीर्णक, पिण्डनिर्युक्ति, सारावली, पर्यन्त साधना, जीवविभक्ति, योनिप्राभृत वृद्धचतुःशरण, जम्बूपयन्ना।

**चूलिका**

अंगचूलिका, बंगचूलिका।

**निर्युक्तियाँ**

आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूत्रकृतांग, बृहत्कल्प, व्यवहार, दशाश्रुतस्कन्ध, कल्पसूत्र, पिण्ड, ओघ, संसक्त।

**शेषसूत्र**

---

१३. जैन आगम साहित्य मनन और मीमांसा, ले० देवेन्द्रमुनि शास्त्री, पृ० १४ प्रकाशक तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, उदयपुर।

कल्पसूत्र, यतिजीतकल्प, श्राद्धजीतकल्प, पाक्षिकसूत्र, खामणासूत्र, वंदित्तुसूत्र, ऋषिभाषितसूत्र ।

वर्तमान स्थिति में श्वेताम्बर जैनों के विभिन्न संप्रदायों में भी आगमिक साहित्य की संख्या को व प्रामाणिकता को लेकर मतैक्य नहीं है, श्वेताम्बर मूर्तिपूजक इनमें से ४५ आगमों को व श्वेताम्बर स्थानकवासी ३२ व तेरापंथी ३२ आगमों को मान्य करते हैं, जो निम्न है—

श्वेतांबर मूर्तिपूजक इनको मानते हैं—११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ६ छेदसूत्र, १० प्रकीर्णक, २ चूलिकासूत्र कुल ४५ हैं ।

श्वेतांबर स्थानकवासी व तेरापंथी नीचे दिए आगम मानते हैं—११ अंग, १२ उपांग, ४ मूल, ४ छेद, १ आवश्यक कुल ३२ हैं ।

इन आगमों में से श्रीकृष्ण चरित्र की दृष्टि से निम्नलिखित ७ सूत्रों का प्रमुख स्थान है :—(१) स्थानांग, (२) समवायांग, (२) ज्ञाताधर्मकथा (४) अन्तकृद्दशा, (५) प्रश्न-व्याकरण, (६) निरयावलिका, (७) उत्तराध्ययन ।

आगमों में श्रीकृष्ण के चरित्र की दृष्टि से निम्नोक्त आगमों का प्रमुख स्थान है—

### (१) स्थानांग

स्थानांग सूत्र के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण सम्बन्धी प्रसंग वर्णित है। इस अध्याय में श्रीकृष्ण की आठों पटरानियों का अर्थात् अग्रमहिषियों का परिचय दिया गया है। इन अग्रमहिषियों के नाम यहाँ पर दिए गये हैं—पद्मावती, गौरी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा, गांधारी और रुक्मिणी ।[१]

### (२) समवायांग

इस चतुर्थ सूत्र में ५४ उत्तम पुरुषों का वर्णन है। इन श्लाघनीय शलाका पुरुषों में श्रीकृष्ण का विस्तृत वर्णन किया गया है। वासुदेव के रूप

---

१. कण्हस्स णं वासुदेवस्य अट्ठ अग्गमहिसिओ अरहो णं अरिट्ठनेमिस्स अन्तिए मुंडा भवेत्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया सिद्धाओ-जाव-सव्वदुक्खपहीणाओ तं जहा—पउमावइ, गौरी, गंधारी, लक्खणा, सुसीमा, जंबवई, सच्चभामा, रुप्पिणी, कण्हअग्गमहिसिओ ।

—स्थानांग अ० ८ सूत्र ६२६, पृ० ३८७, संपादक—पूज्य कन्हैय्यालालजी कमल, आगम अनुयोग-प्रकाशन, साण्डेराव (राज०) अक्टूबर १९७२ ।

में प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण द्वारा तत्कालीन प्रतिवासुदेव जरासंध के वध का समवायांग सूत्र में विस्तार से वर्णन किया गया है। वासुदेव प्रतिवासुदेव का आचरण भी वर्णित है। वासुदेव और प्रति वासुदेव परस्पर प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। प्रतिवासुदेव अत्याचारी, दुष्ट व प्रजापीड़क होता है। वासुदेव द्वारा प्रति वासुदेव का हनन होता है और इस प्रकार पृथ्वी को भारमुक्त किया जाता है। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार वासुदेव की भूमिका का पूर्णतः निर्वाह किया है।[१] सूत्र २०७ का प्रतिपाद्य विषय यही प्रसंग रहा है।

### (३) ज्ञातृधर्मकथा (णामधम्मकहाओ)

यह भी एक षष्ठ अंगवर्षीय आगम है। दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले स्कन्ध के १६वें अध्ययन में श्रीकृष्ण का वर्णन मिलता है। दूसरे स्कन्ध के पांचवें अध्ययन में भगवान अरिष्टनेमि के साथ-साथ श्रीकृष्ण के कथा सूत्र भी आए हैं। भगवान का रेवतक पर्वत पर आगमन होता है। वासुदेव (श्रीकृष्ण) भगवान के दर्शनार्थ यादवकुमारों और कुटुम्बीजनों के साथ उपस्थित होते हैं और भगवान के उपदेशों का श्रद्धासहित श्रवण करते हैं। इसी अध्ययन के अन्तर्गत थावच्चापुत्र द्वारा भगवान के सान्निध्य में प्रवज्या ग्रहण का प्रसंग भी विवेचित हुआ है।[२] सोलहवें अध्ययन में पाण्डवों का वर्णन आया है। इस

---

१. भरहेरवएसु णं वासेसु एगमेगाए उस्सप्पिणीए ओसप्पिणीए चउवन्नं २ उत्तमपुरिसा उपज्जिति वा, उपज्जिस्संति वा, तंजहा– चउवीसं तित्थकरा बारस चक्कवट्टी, नव बलदेवा, नव वासुदेवा।
—समवायांग ५४वां समवाय, पृ० ८४—संपादक—पूज्य कन्हैयालालजी कमल, आगम अनुयोग प्रकाशन, साण्डेराव (राज०) सन् १९५६ में प्रकाशित।

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवतीनामं नगरी होत्था·· तत्थ णं बारवईए नयरीए कन्हे नामं वासुदेवे राया परिवसई···
—ज्ञाताधर्मकथा अ० ५, पृ० १५६, १५७, प्रधानसंपादक युवाचार्य मधुकर मुनिजी, प्रका० आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर ई० सन् १९८१ (राज०)
तएणं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामुक्खेहिं·····बारवई नयरिं मज्झं मझेणं निग्गच्छई। तएणं से कण्हे वासुदेवे ते पउमनाभं रायाणं एज्जमाणं पासइ। —पृ० ४५
तएणं से कण्हे वासुदेव ते पंच पंडवे एवं वयासी —पृ० ५४
तएणं से कण्हे वासुदेवे लवण समुद्दं मझंमज्झेणं वीइवइए, —पृ० ४६१
तएणं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छई। —पृ०४६३

अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि पांडवों की जननी कुन्ती श्रीकृष्ण की बुआ (अर्थात् वसुदेव की बहन) थी। इस आधार पर पांडवों और श्रीकृष्ण के मध्य पारिवारिक सम्बन्ध बताया गया है तथा अमरकंका जाने का वर्णन भी प्राप्त है। १

## (४) अन्तकृद्दशांग

इस आठवें अंग आगम में अंतकृत्केवलियों की कथायें वर्णित हैं। ग्रन्थ अनेक अध्ययनों में विभक्त है और अध्ययनों के आठ वर्ग (समूह) हैं। प्रथम वर्ग के प्रथम अध्ययन में द्वारका का वैभव एवं गौतम की दीक्षा, तृतीय वर्ग अष्टम अध्ययन में श्रीकृष्ण के अनुज गजसुकुमार की कथा है। पाँचवें वर्ग के प्रथम अध्ययन में वैभवपूर्ण द्वारका के विनाश का और श्री कृष्ण के देहत्याग का वृत्तान्त है। द्वारावती नगरी के शक्तिशाली राजा के रूप में श्रीकृष्ण को बतलाया गया है। कृष्ण के भावी जन्म विषय वृत्तांत, कृष्ण की पर-दुःख-कातरता का चित्रण हुआ है। २

**यथा—**

एवं खलु जंबू ! तेणं समएणं बारवईनामं नयरी होत्था। दुवालसजोयणायामा नव जोयणवित्थिण्णा। प्रथम वर्ग ९

तत्थणं बारबईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे राया परिवसई।

—प्रथम वर्ग पृ० १०

तएणं सा देवई कण्हे वासुदेवं एवं वयासी। एवं खलु अहं पुत्ता।

—तृतीय वर्ग १०

तएणं से कण्हे वासुदेवे इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे ण्हाए जाव विभूसिए।

—तृतीय वर्ग, पृ० ५९

तएणं से गयसुकुमाले अणगारे अरहया अरिट्ठनेमिणं अब्भणण्णाए अरहं।

—तृतीय वर्ग पृ० ७७

कहण्णं भंते तेणं परिसेणं गयसुकुमालस्य अणगारस्स साहिज्जे दिण्णे ?

तएणं अरहा अरिट्ठनेमि कण्हं वासुदेव एवं वयासी। —तृतीय वर्ग पृ० ८२

तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी समोसढे जाव एवं खलु कण्हा।

इमीसे बारवइए नयरीए नवजोयण वित्थिनाए जाव देवलोगभूयाए सुरग्गिदिवाय-मूलाए विणासे भविस्सइ। पंचमवर्ग, पृ० ९४-९५

---

१. वही·····ज्ञाताधर्मकथा

२. अन्तकृद्दशांग—प्रधानसंपादक—युवाचार्य श्रीमधुकरमुनिजी (क्रमशः

# चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

( डॉ० शिवप्रसाद सिंह )

पूर्वानुवृत्ति

?
:
देवचन्द्रसूरि
|
अमरप्रभसूरि
|
अजितदेवसूरि वि० सं० १३३३-१३६९

?
:
देवभद्रसूरि
|
सोमचन्द्रसूरि वि० सं० १३३४

?
:
रत्नप्रभसूरि
|
पद्मप्रभसूरि वि० सं० १३२४-१३४...?

?
:
हेमप्रभसूरि
|
रामचन्द्रसूरि वि० सं० १३७८

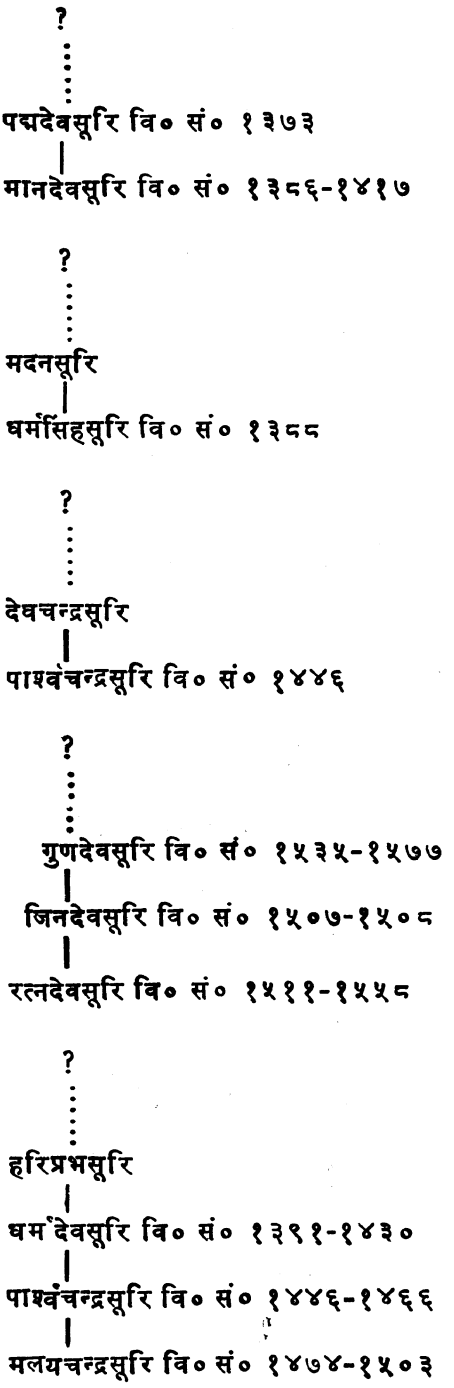
?
पद्मदेवसूरि वि० सं० १३७३
मानदेवसूरि वि० सं० १३८६-१४१७
?
मदनसूरि
धर्मसिंहसूरि वि० सं० १३८८
?
देवचन्द्रसूरि
पार्श्वचन्द्रसूरि वि० सं० १४४६
?
गुणदेवसूरि वि० सं० १५३५-१५७७
जिनदेवसूरि वि० सं० १५०७-१५०८
रत्नदेवसूरि वि० सं० १५११-१५५८
?
हरिप्रभसूरि
धर्मदेवसूरि वि० सं० १३९१-१४३०
पार्श्वचन्द्रसूरि वि० सं० १४४६-१४६६
मलयचन्द्रसूरि वि० सं० १४७४-१५०३

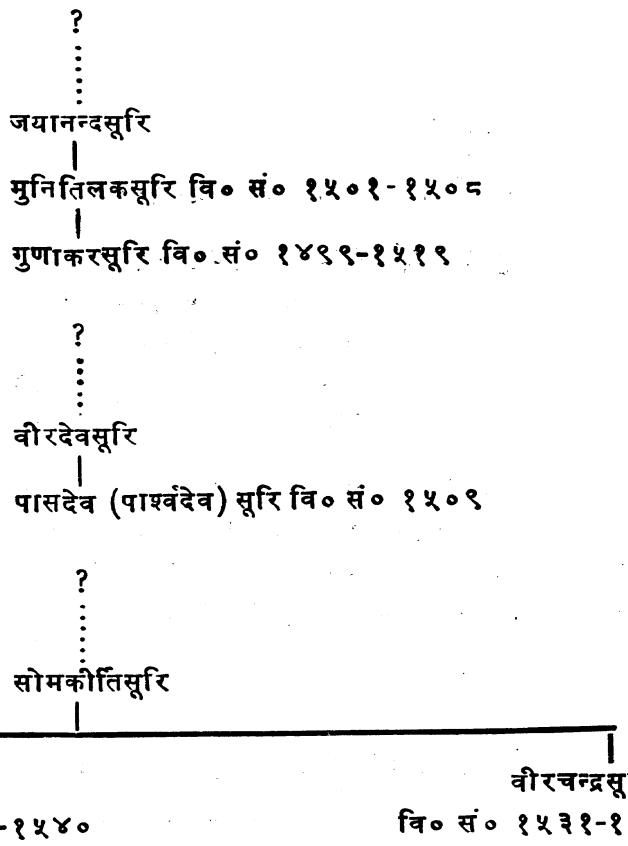


परन्तु इन सबको मिलाकर भी चैत्रगच्छीय मुनिजनों की गुरु-शिष्य परम्परा की नामावली की अविच्छिन्न तालिका का पुनर्गठन कर पाना कठिन है।

साहित्यिक साक्ष्यों के अन्तर्गत 'सम्यकत्वकौमुदी' (रचनाकाल वि० सं० १५०४/ई० सन् १४४८) और 'भक्तामरस्तवव्याख्या' (रचनाकाल वि० सं० १५२४/ई० सन् १४६८) के कर्ता चैत्रगच्छीय गुणाकरसूरि का नाम आ चुका है। किन्तु वे किसके शिष्य थे, यह बात उक्त साक्ष्य से ज्ञात नहीं होता। अभिलेखीय साक्ष्यों में जयानन्दसूरि के पट्टधर मुनितिलकसूरि (वि० सं० १५०१-१५०८, प्रतिमालेख) के शिष्य गुणाकरसूरि वि० सं० १४९९-१५१९, प्रतिमालेख) का उल्लेख मिलता है। अतः समसामयिकता के आधार पर मुनितिलकसूरि के पट्टधर गुणाकरसूरि को 'सम्यकत्वकौमुदी' आदि के कर्ता गुणाकरसूरि से अभिन्न माना जा सकता है।

?
⋮
जयानन्दसूरि
|
मुनितिलकसूरि वि० सं० १५०१-१५०८ प्रतिमालेख
|
गुणाकरसूरि वि० सं० १४९९-१५१९ प्रतिमालेख
वि० सं० १५०४/ई० सन् १४४८ में
**सम्यक्त्वकौमुदी** और
वि० सं० १५२४/ई० सन् १४६८ में
**भक्तामरस्तवव्याख्या** के रचनाकार

ठीक इसी प्रकार चैत्रगच्छीय सोमकीर्तिसूरि के शिष्य चारुचन्द्रसूरि (वि० सं० १५२७-१५४०, प्रतिमालेख) और वि० सं० १५५४/ई० सन् १४९८ में प्रतिलिपि की गयी **भक्तामरस्तवव्याख्या** की दाता प्रशस्ति में उल्लिखित चैत्रगच्छीय चारुचन्द्रसूरि एक ही व्यक्ति मालूम पड़ते हैं :

?
⋮
सोमकीर्तिसूरि वि० सं० १५२७-१५४२, प्रतिमालेख
|
चारुचन्द्रसूरि — वीरचन्द्रसूरि
(वि० सं० १५२७-१५४०, प्रतिमालेख) — (वि० सं० १५३१-१५३४ प्रतिमालेख)
वि० सं० १५५४/ई० सन् १४९८ में लिपिबद्ध की गयी **भक्तामरस्तवव्याख्या** की दाता प्रशस्ति में उल्लिखित

**चैत्रगच्छ की शाखायें** जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्यों से चैत्रगच्छ की कई शाखाओं का पता चलता है। इनका अलग-अलग विवरण इस प्रकार है :

(क्रमशः

# प्रवचन

**धर्मग्रहणं हि सत्प्रतिपत्तिमद्विमलभावकारणम् ।**

परम कृपानिधि महान् श्रुतधर आचार्यदेव श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी स्वरचित 'धर्म बिन्दु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में गृहस्थ जीवन का विशेष धर्म बता रहे हैं।

व्रतमय विशेष धर्म योग्यतासम्पन्न व्यक्ति ही ग्रहण कर सकता है, यह बात बताने के बाद, टीकाकार आचार्य श्री एक प्रश्न पैदा करते हैं। वे कहते हैं: धर्मः स्वचित्तपरिशुद्धयधीनः' धर्म पैदा होता है परिशुद्ध चित्त में से ! तो फिर दूसरे से धर्म ग्रहण करने की बात ही कहाँ रहती है ? जो वस्तु स्वयं में से पैदा होती हो, वह वस्तु दूसरे से लेने की बात संगत नहीं होती है।

प्रश्न मार्मिक है। धर्म जैसा परम तत्त्व क्या लेने-देने की वस्तु है ? धर्म तो स्वयंभू तत्व है। परिशुद्ध चित्त में से पैदा होने वाला तत्त्व है। तो फिर ग्रन्थकार आचार्यदेव ने धर्म ग्रहण करने की और धर्म प्रदान करने की बात यहां क्यों कही ? इस प्रश्न का समाधान ग्रन्थकार स्वयं करते हैं।

**धर्म का कारण भी धर्म :**

सद्गुरु से धर्म ग्रहण करना विमल भावों की जाग्रति का अपूर्व निमित्त है। जो मनुष्य अपनी शक्ति का (व्रतपालन करने की) पर्याप्त विचार करता है और जिनवचनानुसार, सद्गुरु से व्रत ग्रहण करता है, उसके आंतरिक भाव विशुद्ध बनते हैं, निर्मल-विमल बनते हैं। भावों की निर्मलता ही प्रधान कारण है व्रतग्रहण की, धर्मग्रहण की।

चित्त में निर्मल भाव रूप·· विशुद्ध भाव रूप धर्म पैदा करने के लिए धर्म ग्रहण करने की वाह्य विधि करनी चाहिये। समझ लेना कि सारे बाह्य क्रिया कलाप, भीतर के शुभ-शुद्ध भाव प्रकट करने के निमित्त है, साधन है, आलंबन है। शुभ क्रिया से शुभ भाव प्रकट होते हैं, अशुभ क्रिया से अशुभ भाव प्रकट होते हैं। क्रिया और भाव का घनिष्ठ संबन्ध है। यदि शुभ भाव, पवित्र विचार निर्मल अध्यवसाय चाहते हो तो शुभ, पवित्र और प्रशस्त क्रियायें करते रहो। अच्छे कार्य करते रहो।

और, जैसे आत्मा के शुभ और शुद्ध भाव धर्म हैं वैसे शुभ भाव और शुद्ध भाव प्रकट होने में निमित्तभूत क्रिया भी धर्म। वे सभी क्रियायें कार्य धर्म हैं जो शुभ-शुद्ध अन्तर भाव प्रकट करने में निमित्त बनते हैं। इसलिये, यदि हम

निर्मल भावरूप धर्म चाहते हैं तो हमें पवित्र क्रियायें करनी ही होगी। जिनेश्वर भगवंतों ने जो क्रियायें करने का उपदेश दिया है, वे सभी क्रियायें आदर के साथ प्रीति के साथ करनी होगी।

सद्गुरु से धर्मग्रहण की एक विधिवत क्रिया करने की होती है। उस विधिवत् क्रिया से व्रतमय धर्म ग्रहण करने से चित्त में विमल भाव पैदा होते हैं। परन्तु वह क्रिया खिन्न मन से नहीं करना है, अविधि से नहीं करना है, चंचल मन से नहीं करना है।

## हर धर्मक्रिया में प्रीति और आदर चाहिए :

जो भी धर्मक्रिया करें, उस धर्मक्रिया में अन्तरप्रीति होनी चाहिये। परन्तु अनादिकालीन पापप्रीति जब तक टूटेगी नहीं वहां तक धर्मप्रीति बनेगी नहीं। संसार की पापक्रियायें प्रीति से मत किया करो, उन क्रियाओं के प्रति घृणा-नफरत का भाव जाग्रत करो। प्रारम्भ में भले ही कृत्रिम नफरत करते रहो···! धीरे धीरे स्वाभाविक नफरत पैदा हो जायेगी। वैसे धर्मक्रियाओं में प्रारम्भिक प्रीतिभाव भले ही कृत्रिम हो··· धीरे धीरे वह प्रीतिभाव स्वाभाविक बन जायेगा प्रीति हो जायेगी धर्मक्रिया के प्रति, बाद में आदर तो हो ही जायेगा। प्रीति के साथ आदर की भावना जुड़ी हुई रहती है। 'शुभभावों को जगाने वाली यह पवित्र क्रिया जिनेश्वर भगवंत ने बताकर हम पर परम उपकार किया है··· ··· कितनी अच्छी क्रिया है यह !' इस प्रकार विचार करने चाहिए। ऐसे विचारों से प्रीति का भाव दृढ़ होता जाता है।

## धर्मक्रिया में चाहिये सातत्य और विधिपरता :

प्रीति आदर का भाव तभी बढ़ता रहेगा यदि आप क्रिया सतत यानी प्रतिदिन करते रहोगे। ऐसा नहीं कि आज एक धर्मक्रिया की, बाद में दो-चार दिन नहीं की, फिर एक-दो दिन की, बाद में आठ दस दिन नहीं की ! धर्म-क्रिया में सातत्य बना रहना चाहिए। नियमितता होनी चाहिए।

सातत्य के साथ, उस दिन धर्मक्रिया की विधि के प्रति भी आदर होना चाहिए। जो क्रिया जिस विधि से करने का विधान है, उस विधान से ही वह क्रिया करनी चाहिए यदि प्रीति होगी तो विधि का पालन सहजता से होता रहेगा। क्रिया में रस-रुचि नहीं होगी तो अविधि से क्रिया होती रहेगी। अथवा अविधि से क्रिया करने से क्रियारुचि धीरे धीरे नष्ट होती जायेगी। धर्मक्रिया में आनन्द का अनुभव करना हो तो विधि का पालन अवश्य करते रहो।

## सभा में से :

एक धर्मक्रिया जब 'रूटीन' बन जाती है तब उसमें नीरसता आ जाती है !

**महाराजश्री :**

नहीं ऐसा नहीं है, जो धर्मक्रिया हम प्रेम से नहीं करते हैं, सतत नहीं करते हैं, विधिपूर्वक नहीं करते हैं, अर्थज्ञान के साथ नहीं करते हैं, उस धर्मक्रिया के फल का विचार नहीं करते हैं, तब वह 'रूटीनवर्क' लगता है और नीरसता आती है। दुकान पर जाना··· पैसा कमाना··· क्या रुटीनवर्क नहीं है? परन्तु ज्यों ज्यों पैसा मिलता जाता है त्यों-त्यों पैसा कमाने का रस बढ़ता जाता है न? वास्तव में देखा जाय तो जिस क्रिया में हमें लाभ···प्राप्ति दिखाई देती है···वह क्रिया रुटीन बन जाती है और उस कार्य में हमें आनन्द मिलता है। धर्मक्रिया में हमें 'लाभ' दिखना चाहिये, कुछ प्राप्ति दिखनी चाहिये··· तो आनन्द का अनुभव होगा। सबसे बड़ा लाभ होता है विमल निर्मल भावों का! चित्त निर्मल भावों से लबालब भर जाता है! यही धर्म है, यही धर्म का फल है।

**धर्मक्रिया में एकाग्रता और अर्थ ज्ञान चाहिये :**

धर्म क्रिया के प्रति प्रीति का भाव होगा तो मन एकाग्र बनेगा। जहां प्रेम होता है वहां मन एकाग्र बनता ही है। धर्मक्रिया के साथ मन का जुड़ना अति महत्वपूर्ण है। उस धर्मक्रिया के भाव में मन को जोड़ना चाहिए।

यदि धर्मक्रिया के साथ मन जुड़ जाता है तो क्रिया 'अमृतक्रिया' बन जाती है। क्रिया करने वाले का हृदय आनन्द से भर जाता है। उसकी आत्मा में विमलभावरूप धर्म पैदा होता है।

परन्तु धर्मक्रिया में मन तब जुड़ेगा, जब उस धर्मक्रिया के सूत्रों के अर्थ भावार्थ का ज्ञान होगा। अपनी सारी धर्मक्रियाओं के सूत्र संस्कृत और प्राकृत भाषा में है। ज्यादातर प्राकृत भाषा में है। दो-तीन सूत्र गुजराती भाषा में है। आप गृहस्थ लोगों को प्राकृत—संस्कृत भाषा का तो ज्ञान ही नहीं है। आप कैसे उन सूत्रों का भावार्थ समझ पाओगे? इसलिए सूत्रों का अर्थज्ञान व्यवस्थित रूप से ग्रहण करना चाहिए। धार्मिक पाठशालाओं में भी अर्थज्ञान विशेष रूप से देना चाहिए।

प्रत्येक धर्मक्रिया के प्राण होते हैं सूत्र। सूत्रों का उच्चारण और शुद्धि भी विशेष महत्व रखती है। उच्चारण स्पष्ट होना चाहिये और अशुद्धियां नहीं होनी चाहिये। शुद्ध और स्पष्ट सूत्रोच्चार के साथ अर्थ का उपयोग होना चाहिये। तब मन को एकाग्रता सहजता से प्राप्त होगी।

व्रतमय विशेष गृहस्थधर्म प्रदान करने की और ग्रहण करने की क्रिया, धर्मग्रहण करने वाले शिष्य के लिए, श्रमणोपासक के लिए फलवती बनती है। जिनवचन के अनुसार विधिपूर्वक धर्मग्रहण करने से चित्त में विमल भाव··· निर्मल भाव जाग्रत होते हैं, यही फलवत्ता है धर्मग्रहण की।

**धर्मग्रहण में गुरु-अनुग्रह आवश्यक :**

विधिपूर्वक सद्गुरु से धर्मग्रहण करने से गुरु अनुग्रह यानी गुरु कृपा प्राप्त होती है। गुरु के हार्दिक आशीर्वाद के साथ धर्म ग्रहण करनेवाला मुमुक्षु आत्मा, प्रायः व्रतपालन में सफल बनता है। व्रतपालन में उसका उत्साह बढ़ता है।

आचार्यदेव देवचन्द्रसूरीश्वरजी, चांगदेव को लेकर धंधुका से विहार कर, खम्भात पधार जाते हैं। चांगदेव को विधिपूर्वक साधु धर्म प्रदान करना था। चांगदेव ने गुरुकृपा तो प्राप्त कर ही ली थी।

**सभा में से :**

आचार्यदेव ने चांगदेव को सीधा साधुधर्म देने का निर्णय क्यों किया? पहले गृहस्थ धर्म देते, उसका पालन करवाते और बाद में साधुधर्म देते तो उचित नहीं था।

**महाराजश्री :**

राजमार्ग तो यही है कि पहले श्रावकधर्म का पालन करें और बाद में साधुधर्म को स्वीकार करें। साधुधर्म का पालन करने के लिये वही मनुष्य योग्य माना गया है कि जिसने श्रावकधर्म का पालन समुचित रूप में किया हो। श्रावकधर्म का अभ्यास करते हुए परिपक्वता प्राप्त होती है, व्रतपालन की दृढ़ता प्राप्त होती है। इस से साधुधर्म के पालन में सरलता रहती है।

परन्तु हर नियम का अपवाद होता है! चांगदेव में आचार्यदेव ने वैसी योग्यता देखी थी कि 'यह लड़का श्रावकधर्म का पालन किये बिना भी साधुधर्म का पालन करने में समर्थ है, शक्तिमान है।' योग्यता को देखनेवाले आचार्यदेव विशिष्ट ज्ञानी थे। चांगदेव का भविष्य देखने की क्षमता थी उनमें। इसलिये उन्होंने चांगदेव को सीधा ही साधुधर्म देने का निर्णय किया था। ऐसे महापुरुषों का अनुकरण हर कोई साधु या आचार्य नहीं कर सकते हैं।

आचार्यदेव खंभात पधारे। खंभात में उस समय महामन्त्री उदयन जैन संघ के अग्रणी थे। आचार्यदेव ने उनको बुलाया। चांगदेव की दीक्षा के विषय में उनसे परामर्श किया और श्रेष्ठ मुहूर्त में उनको दीक्षा दी गई। दीक्षामहोत्सव उदयन मंत्री ने किया। चांगदेव का नाम मुनि सोमचन्द्र रखा गया।

सब कुछ जिनाज्ञानुसार एवं विधिपूर्वक किया गया। सोमचन्द्र मुनि, साधुधर्म प्राप्त होने पर अत्यन्त प्रफुल्लित हो गये। विमल भाव उल्लसित हो गये। शुभ भावों की बाढ़ आ गयी उनके हृदय में।

(क्रमशः

# महाराजा श्रेणिक

## श्रीमती राजकुमारी बेगानी

### पूर्वानुवृत्ति

बालक ने कहा—बेन्नातट नगर से। बेन्नातट का नाम सुनते ही राजा चौंक गए—आठ वर्ष पूर्व की धूमिल स्मृति एकाएक उभर आयी। बोले—'तब तो तुम नगर सेठ धनवाह को अवश्य ही जानते होगे—जानता हूँ—निर्भीक बालक ने उत्तर दिया ? उनके नन्दा नामक पुत्री है उसके एक मेरा समवयस्क पुत्र है वह मेरा परम मित्र है इसलिए सब कुछ जानता हूं।'

राजा ने कहा—धीमंत बालक तुम्हारे बुद्धि कौशल्य ने आज मुझे ही नहीं सारे राजगृह को चकित कर दिया है। घोषणा के अनुसार तुम ही पुरस्कार पाने के अधिकारी हुए।'

किन्तु हां—तुम्हारे उस नन्दा पुत्र मित्र का क्या नाम है ? उसका नाम है 'अभय कुमार'। सुनते ही राजा की देह रोमांचित हो गयी—नेत्र सजल सोचने लगे—"मैंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया किन्तु नन्दा ने अक्षरशः किया है।' 'अच्छा बालक यह तो बताओ—तुम अपने ऐसे अन्तरंग मित्र को छोड़कर अकेले कैसे आए ? आप ठीक ही सोच रहे हैं महाराज—मैं अकेला नहीं आया हूं। वह भी मेरे साथ आया है। वह और उसकी माता नगर के बाहर उद्यान में ही ठहरे हुए हैं।

'उद्यान में ठहरे हुए हैं तुम सच कह रहे हो ? बिल्कुल सच महाराज ? चलिये मेरे साथ और देख लीजिये उन्हें। भला हाथ कंगन को आरसी क्या ?

आनन्द से प्रफुल्लित बन राजा ने नन्दा के प्रवेश महोत्सव की तैयारी का राज्य कर्मचारी को आदेश दिया और स्वयं, उस बालक के साथ उद्यान में पहुँचे।

अभय ने शीघ्रता पूर्वक माँ को सारा समाचार कह सुनाया।

जैसे ही राजा ने उद्यान में प्रवेश किया उस कृशकाय—पीतवर्णा मलिन वस्त्र धारिणी नन्दा को देखकर—दुखित हृदय से सोचने लगे—हाय, मैंने यह कैसा अन्याय किया ? मेरे वियोग में इस विकसित कमलिनी-सी-नन्दा की क्या अवस्था हो गयी। कहाँ मैं सुन्दर रमणियों के रमण में मगन और कहाँ यह पतिव्रत को धारण करने वाली सती-साध्वी।

तभी नन्दा उनके चरणों में आ गिरी। राजा ने उसे उठाकर वक्ष से लगा लिया—कहने लगे नन्दा क्षमा करो—बार-बार क्षमा। नन्दा ने कहा ऐसा न कहें प्रिय, किन्तु इतना अवश्य है— मैंने आपको शीलव्रत पालन करने का जो वचन दिया था उस वचन की पूर्णतः रक्षा की है। सुनकर मगधराज ने पुनः अपनी प्राण प्रिया नन्दा को, प्रथम प्रेम की अधिकारिणी को वक्ष से लगा लिया—बोले, प्रिय—यह तो बताओ—तुम्हारा वह शुभ स्वप्नों की सूचना युक्त विलक्षण दोहद से अपने सुन्दर, मंगलमय, महान् चरित्र को प्रकट करने वाला पुत्र अभयकुमार कहाँ है ?'

नन्दा ने सम्मुख खड़े अभयकुमार की ओर संकेत करते हुए कहा—यही है आपका वह पुत्र जिसने कुएँ से मुद्रिका निकालकर पूरी राजगृह को चकित कर दिया है।

'यही है मेरा अभयकुमार'—कहते-कहते राजा ने उसे आलिंगन में ले लिया। बार-बार मस्तक सूंघा—मुख चूमा—बोले—'कितना भाग्यशाली हूं मैं ? नन्दा धन्य है तुम्हारे इस पुत्र को। जानती हो मेरे पुरस्कार की घोषणा को ? पुरस्कार के अनुसार मेरे परम बुद्धिमान मंत्रियों के ऊपर महामात्य की उपाधि से यह तुम्हारा छोटा सा पुत्र अभिषिक्त हो गया है इतना ही नहीं मेरे आधे राज्य का अधिकारी भी। चलो नन्दा लगता है—राजपुरुष तुम्हारे नगर-प्रवेश की तैयारी करके आ चुके हैं उसी का कोलाहल है यह बाहर।

इस प्रकार नन्दा से मिलकर प्रसन्नचित्त मगधराज उसे अपने पट्टहस्ती पर निधान की तरह स्थापित कर अभयकुमार सहित नगर में प्रविष्ट हुए। नगर की जनता आज अपनी पट्ट महारानी बनने वाली नन्दा के रुप गुण और सौभाग्य की चर्चा करते हुए नहीं थक रही थी। लक्ष-लक्ष आँखें आज नन्दा के सौन्दर्य-पीयूष का पान करती हुयी आनन्द में निमग्न हो रही थी।

नन्दा ने राजमहल में प्रवेश करते ही अपनी सभी सासुओं के चरण स्पर्श किए, उन लोगों ने भी नन्दा को आशीर्वाद की मधुर फुहार से भिगो डाला। महाराज ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार अभय कुमार को महामात्य भी बना दिया तथा आधा राज्य भी सौंप दिया।

कहते हैं—पूर्व जन्म के शुभ-अशुभ संस्कार भी मनुष्य के उत्थान पतन में सहायक बनते हैं तभी तो परमावश्यक है इन संस्कारों से कर्मों से मुक्त होकर शुद्ध स्थिति में पहुंचना।

राजा के लिए भयंकर वन्य पशुओं का आखेट जहाँ ग्रामीण प्रजा की रक्षा के लिये आवश्यक है, वहीं उसका व्यसन बन जाना भी महापाप है।

हरी-हरी दूब चरते उछलते-कूदते चौकड़ी भरते हिरणों का शिकार तो मात्र जिह्वा-स्वाद के लिये या व्यसन पूर्ति के लिए किया गया महापाप नहीं तो क्या हैं ? वे किसी जीव की हिंसा नहीं करते बल्कि वे तो अरण्य की शोभा है, वनवासी ऋषियों के साथी हैं ।

महाराजा श्रेणिक भी परम व्यसनी हैं आखेट के । शासन-संचालन में दक्ष, मेधावी, बुद्धि, शौर्य कार्य कौशल आदि अनेक-अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी यह एक अवगुण तो था ही उनमें ।

आज महाराजा आखेट को निकले हैं । अपने रक्षकों एवं कर्मचारियों के साथ । किन्तु न जाने क्यों आज कोई शिकार ही हाथ नहीं आया । कुपित हो उठे महाराज । तभी एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहाँ मृगों के झुण्ड चौकड़ी भरते उछल-कूद कर रहे थे । जैसे ही बेचारों ने घोड़ी की पद-ध्वनि सुनी सब के सब प्राण भय से भाग छुटे और न जाने कहाँ अदृश्य हो गए । किन्तु नहीं भाग पायी एक गर्भवती हिरणी थक कर चर बनी आखिर गिर पड़ी । महाराज ने भी तुरन्त निशाना साधा और एक ऐसा पैना तीर साधा कि बेचारी चित्कार करती हुई वहीं ढेर हो गयी । वहीं नहीं उसके गर्भ का शिशु भी माँ के गर्भ से मृत्यु के गर्भ में जा गिरा । बड़े ही प्रसन्न हुए महाराज एक बाण से दो प्राणियों का शिकार करके ? सभी संरक्षक भी दौड़ते हुए आए और लगे-महाराज की वाह-वाह करने । कहने लगे—सच महाराज जवाब नहीं आपके निशाने का । पुरुषार्थ है महाराज का । रोम-रोम पुलकित हो उठा महाराजा श्रेणिक का । मारे खुशी और गर्व के फूले नहीं समा रहे थे । मृत्यु के पूर्व बेचारी हिरणी अपनी बड़ी-बड़ी आँख विस्फारित कर किस प्रकार करुणा की भीख मांग रही थी अपने लिये अपने गर्भ के लिए । क्या उसे देख पाता है वह मनुष्य जिसकी आँखों में हिंसा उतर आयो हो । हिंसा मानव के करुणा भरे हृदय को भी क्रूर निर्दयी और पाषाण बना देती है । सोचने समझने की शक्ति ही समाप्त कर देती है । यही तो हुआ हमारे कथानायक के साथ उस समय उन्हें कहाँ ज्ञात था एक तो दुष्कर्म और फिर उसमें सफल होकर हर्षित होना गर्व से भर उठना । ओह ! कितने चिकने निकाचित कर्मों के बन्ध का कारण बना यह कार्य ।

महाराज श्रेणिक के चारों ओर सुख समृद्धि वैभव ऐश्वर्य का समुद्र उड़ रहा है और एक से एक परम सुन्दरियों से भरा पड़ा है उनका अन्तःपुर किन्तु फिर भी पट्टरानी चेलना के रूप की तुलना नहीं है । वे वैशाली के अधीश्वर महाराज चेटक की परम रूपसी कन्या है । लिच्छवि वंश की राजकुमारियों के अतुलनीय सौंदर्य की चर्चा पूरे देश में व्याप्त थी तभी तो श्रेणिक हर कर लाए

थे रूप शिरोमणि चेलना को। वह मगध साम्राज्ञी नहीं श्रेणिक की हृदय साम्राज्ञी भी। वह चाहती थी महाराज भगवान महावीर के शिष्य बने।

एक दिन भगवान महावीर राजगृही के गुणशील उद्यान में पधारे। देवों ने संमवसरण की रचना की। जनता उमड़ पड़ी उनके पावन दर्शनों को। चेलना भी हठ पकड़कर महाराज को ले आयी। उस भव्य अलौकिक समवसरण में। ज्योंहि उन्होंने भगवान महावीर को देखा देखते ही रह गए। आँखें तृप्त नहीं हो पा रही थी उस अनुपमय सौंदर्य का पान कर उनके कमल नयन करुणा से आप्लावित थे। विलक्षण था उनके देह सोष्ठव-सुवर्ण सा दमकता वर्ण, साँचे में ढले अंग-प्रत्यंग। उनकी भेद्य गम्भीर वाणी से तो ऐसा लगा जैसे अमृत का झरना ही झर रहा था। पुलकित हो गया महाराज का तन-मन। वे आगे बढ़े भगवान का वन्दन किया तथा यथोचित स्थान ग्रहण किया। उनके श्री मुख से देव गुरु और धर्म का सत्य स्वरूप सुनकर मिथ्यात्व सम्यक्त्व का भेद समझा, रहस्य समझा, आत्मा के सत्य स्वरूप को पहिचाना। उनके हृदय में रही शंकायें स्वतः ही शान्त हो रही थीं। सारे अनुत्तरित प्रश्न उत्तरित हो रहे थे बिना पुछे ही, विना प्रश्न किए ही। सुनते - सुनते हृदय की सारी कालिमायें बह गयीं, सारी शंकायें समाप्त हो गयीं। अब तो वे चल पड़े सम्यक्त्व की उस राह पर जो अन्धकार से प्रकाश की ओर अज्ञान से ज्ञान की ओर, अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जाती है। अब वे परम-परम भक्त हैं भगवान महावीर के। उस महावीर के जिनके विषय में उन्होंने सुना था कि भारत के प्रकाण्ड, उद्भट्ठ, मुर्धन्य ११ विद्वान उनके अपूर्व ज्ञान से परास्त होकर उनके शिष्य बन गए हैं। आज तो उन्होंने दर्शन किया उन ग्यारह परम विभूतियों का? नमन किया उनके गणों का और गण के गणधरों का।

महाराज श्रेणिक रूपसी महारानी चेलना को इतना चाहते थे कि उसके अलग होते ही आकुल, व्याकुल हो जाते थे। वे चाहते थे कि उनका यह प्रेम अबाध्य रहे, अपूर्व रहे सदा-सदा के लिए अमर हो जाए। इसी अभिव्यक्ति के के लिए वे चेलना को एक ऐसा एक स्तम्भ पर बना अपूर्व महल बनवा कर देना चाहते थे जैसा आज तक किसी ने नहीं बनवाया। अपने विचारों को क्रियान्वित करने के लिए एक अत्यन्त कुशल, चतुर, पैनी दृष्टि रखने वाले बढ़ई को बुलवाया और उसे अपने मनोनीत एक स्तम्भ वाला महल बनाने की आज्ञा दी। किन्तु इसमें कठिनाई ये थी कि इतना उत्तम काष्ट मिलना मुश्किल था। फिर भी राजाज्ञा शिरोधार्य कर बेचारा बढ़ई अरण्य-अरण्य भटकने लगा। सूक्ष्मता से हर वृक्ष का अवलोकन करने लगा।

अन्ततः एक समस्त शुभ लक्षणों से युक्त वृक्षपर उसकी दृष्टि जो टिकी—सोचने लगा सुन्दर, सुगन्धित मधुर फल-फूलों से लदा आकाश पर्यन्त ऊँचा यह वृक्ष कोई साधारण वृक्ष नहीं है। अवश्य ही यह तो मुझे देवों द्वारा अधिष्ठित मालूम होता है अतः उस बुद्धिमान बढ़ई ने धूप-दीप नैवेद्य और सुगन्धित पुष्पों से अष्टम तप कर उस वृक्ष के अधिष्ठायक व्यंतर देव का पूजन किया। वृक्ष का अधिष्ठायक देव प्रसन्न हो उठा। वह अभयकुमार के पास जाकर बोला—मंत्रीवर, आप उस बढ़ई को मेरे आश्रय रूप वृक्ष को काटने से रोके। मैं स्वयं आपको एक स्तम्भी महल तैयार करा दूँगा।

व्यंतर के कहे अनुसार अभयकुमार ने बढ़ई को जंगल से बुला लिया। और व्यंतर देव ने भी एक ही रात्रि में एक खम्भे वाला महल बनवा दिया। साथ ही उसके चतुर्दिक सभी ऋतुओं में फल देने वाले वृक्षों से सुशोभित उद्यान भी बनवा दिया।

महाराज महारानी चेलना के साथ उस अलौकिक भव्य मनोरम महल में प्रविष्ट हुए। उन्हें लगा जैसे उनका प्रेम साकार होकर सर्वत्र विहँस रहा है। स्थापत्य कला का वह बेजोड़ नमुना महाराज को मन्त्रमुग्ध किये था। सौरभ युक्त शीतल मन्द समीर उनके प्राणों को जीवंत किए था। पक्षियों का मधुर कलरव उनके तन-मन को बेसुध किए था। तभी आम्रकुंजों में शत-शत कोयल कुहुक उठीं। राजा आश्चर्य चकित हुए बातायन पर आए तो देखा—आम्रवृक्ष फलों से लदा हुआ है? सोचने लगे—विस्मय पर विस्मय। बिना बसन्त के कोयल की यह कुहुक—में आम्रफल? लाख-लाख धन्यवाद दिया अपने महान् मेधावी पुत्र अभयकुमार को जिसका बुद्धि कौशल हर असम्भव को सम्भव बनाने में समर्थ था।

नहीं भूल पाए श्रेणिक ऐसी देवी रचना के मध्य रहकर भी अपने परम प्रियतम महावीर को। महल के समीप ही एक अत्यन्त सुन्दर जिनालय बनवाकर महावीर की भव्य प्रतिमा प्रतिष्ठित कर नित्य दोनों उनकी पूजा अर्चना करते। हृदय की श्रद्धा-भक्ति रूपी कमल उनके चरणों में अर्पित करते। प्रतिदिन १०८ स्वर्ण द्रव्यों से उनकी आराधना करते। प्रेम और भक्ति में डूबे दिन बड़े ही आनन्द से व्यतीत होते गए।

एक दिन प्रातःकाल महारानी चेलना पूजन के पुष्पचयन करने जब उद्यान में गयी तो उस आम्रवृक्ष को फल रहित देखा। महारानी ने तुरन्त ये सूचना राजा को भिजवायी। सब कुछ स्वयं देखने के बाद राजा ने प्रहरियों को डाँटा धमकाया—उनकी असावधानी के लिये दण्ड देना निश्चित किया। जब यह

खबर अभयकुमार को मिली तो वे राजा की सेवा में उपस्थित हुए बोले—'महाराज ये कार्य साधारण चोर का नहीं है चोर तो क्या जहाँ अजनबी पक्षी भी प्रविष्ट नहीं हो सकता वहाँ आम वृक्ष से आम चुराया जाना अत्यन्त दुष्कर है। फिर भी आप चिन्ता न करें मैं अवश्य ही उस चोर को पकड़ूँगा।

अन्ततः अभयकुमार ने अपनी पैनी दृष्टि, अद्भुत सूझ-बूझ से पकड़ ही लिया—मंत्रबल से आम चोरी करते एक चाण्डाल को।

चोर राजा के सम्मुख लाया गया। देखते ही राजा ने क्रोधावश में उसे प्राणदण्ड सुना डाला। अभय ने कहा महाराज—आप पहले इससे इसकी विद्या सीख लीजिये—ऐसा न हो कि वह विद्या इसके साथ ही समाप्त हो जाए।

राजा को यह परामर्श उचित लगा। बेचारा प्राण भय से थर-थर कांपता चोर लगा राजा को विद्या सिखाने। किन्तु क्या आश्चर्य राजा वह विद्या सीख ही नहीं पा रहे थे। अब तो राजा और कुपित हो गए—बोले—'क्यों रे' कपट कर रहा है। मुझे विद्या क्यों नहीं आ रही है? पार्श्व में खड़े अभयकुमार ने कहा—'महाराज' विद्या कैसे आयेगी? बिना विनय के कभी विद्या आयी है। इस समय ये चोर आपका गुरु है। अतः आप इसे सिंहासन पर बैठाइये गुरु की भाँति और स्वयं शिष्य की भाँति विनय सहित उसके सम्मुख खड़े होकर विद्या ग्रहण कीजिये।

राजा ने ऐसा ही किया और करते ही तत्काल विद्या सिद्ध हो गयी।

क्रमशः

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

—मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७०००० ६
फोन : २४१-०७१९

## संकलन

### शरीर में स्वयं स्वस्थ होने की क्षमता है

आज हमारे सारे सोच का आधार जो प्रत्यक्ष है, अभी सामने है उसके आगे-पीछे जाता ही नहीं। 'सही आस्था लक्ष्य-प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी है। रोग कहीं बाजार में नहीं मिलता।' रोग का कारण ख़ुद हम हैं। अनेक विषयों में हमारी धारणाएँ ग़लत हैं।

वास्तव में दर्द हमारा सबसे बड़ा दोस्त है। वह हमें जगाता है। कर्तव्यबोध-हेतु चिन्तन की प्रेरणा देता है, चेतावनी देता है; परन्तु सही दृष्टि न होने से हम उसे अपना शत्रु मानते हैं। हम स्वप्न में हैं, बेहोशी में जी रहे हैं। दर्द उस बेहोशी को भंगकर हमें सावधान करता है।

रोगी सुनना नहीं चाहता। उसे दबाना चाहता है। उपचार स्वयं के पास है और वह ढूँढ़ता है बाज़ार में, डाक्टर एवं दवाइयों में। जितना डॉक्टर एवं दवा पर विश्वास है उतना अपने आप पर, अपनी छिपी क्षमताओं पर नहीं। यही तो मिथ्यात्व है। वह कभी चिन्तन करता है कि मनुष्य के अलावा अन्य चेतनाशील प्राणी अपने-आपको कैसे ठीक करते हैं? क्या स्वस्थ रहने का ठेका दवा एवं डाक्टरों के सम्पर्क में रहने वालों ने ही ले रखा है? वस्तुतः हमें इस बात पर विश्वास करना होगा कि शरीर ही अपने-आपको स्वस्थ करता है, अच्छी से अच्छी दवा और चिकित्सक तो शरीर को अपना कार्य करने में सहयोग मात्र देते हैं। जिसका शरीर सहयोग करेगा वही स्वस्थ होगा। स्वास्थ्य के सम्बन्ध में यही दृष्टि सम्यक दर्शन है। तथा सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करने का मूलभूत आधार भी है।

—चंचलमल चौरड़िया

साभार : तीर्थंकर अगस्त-सितम्बर—९६

## जन पत्र पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

तिर्थंकर अगस्त-सितम्बर ९६

जन्म क्या है ? ( कविता )—मिश्रीलाल जैन, धार्मिक होने का अर्थ—सम्पादकीय, जैन संस्कृति में सेवा भाव—उपाध्याय अमर मुनि, समकित की बादरिया—राजमल रखैया ।

सम्यग्दर्शन और स्वास्थ्य—चंचल मल चौरड़िया

संस्कृति का मार्ग : समाज सेवा—भगवान दास केला

विवेक : क्या ग्राहन—क्या अग्राहन—डा० नेमीचन्द जैन

नग्नता : अपरिग्रह की चरम सीमा—डा० नेमीचन्द / आचार्य विद्यानन्द ( बातचीत १ )

इन्द्रिय विजयी होने पर ही नग्नता सार्थक ( बातचीत—२ )
—डा० नेमीचन्द /मुनि श्री क्षमा सागर

कसौटी—( पुस्तक समोक्षा ) पत्र पत्रांश समाचार परिशिष्ट

पूजा व्यक्ति की नहीं व्यक्तित्व की—आचार्य श्री विद्यासागर ।

Jain Journal Oct, 95

Peace through Non-Violence—Pujya Shree Chitrabhanu, Ascetic Mother Visudhamati—Philospher-Mathematician. Dr. Mrs. Padmavathamma, Mahatma Gandhi and Kavi Raj accandra on Philosphical Discourse — Brahmacari Sri Goverdhanadasa.

The Human Person from Jaina and Buddhist Perspectives—Dr. Vincent Sekhar S. J, News on Jainism Around the World.


सौजन्य से :

**BOYD SMITHS PVT. LTD.**

**B-3/5, GILLANDAR HOUSE**

**8, Netaji Subhas Road,**

**Calcutta-700 001**

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

WB/NC-330
**Vol. XX No. 5** **TITTHAYARA** **September 1996**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

प. पू. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गांधीनगर, पिन–382009